कठोपनिषद् में अध्यात्म–विमर्श

डॉ. रामसिंह चौहान, सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

कठोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बद्ध है। सम्भवत: इसी कारण इसका कठोपनिषद् नाम रखा गया। इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन–तीन वल्लियाँ हैं। इसमें यम और नचिकेता के संवाद के माध्यम से नैतिकता, नचिकेत अग्नि और उससे प्राप्त होने वाले फल तथा ब्रह्म विद्या का विस्तृत विवेचन सरल, सुबोध भाषा में किया गया है। यद्यपि इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मज्ञान ही है।

कठोपनिषद् में कर्त्तव्य, यज्ञ तथा ब्रह्मविद्या इन तीनों का पारस्परिक समन्वय स्थापित करते हुए यह दर्शाया गया है कि ये तीनों परस्पराश्रित, अन्योन्याश्रित तथा एक–दूसरे के पूरक हैं। ब्रह्म रूपी मंजिल तक पहुँचने के लिए प्रथम दो सोपान चढ़ना परमावश्यक है। इस उपनिषद् में त्रिविध विषयों में साध्य और साधन के रूप में तारतम्य स्थापित किया गया है।

नचिकेतोपाख्यान के माध्यम से यह भी प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य के लिए श्रुति तथा स्मृतियों द्वारा विहित भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ ये पाँच महायज्ञ करना भी अनिवार्य है। इन पाँचों यज्ञों का कठोपनिषद् में सैद्धान्तिक दृष्टि से ही नहीं अपितु व्यावहारिक दृष्टि से भी समर्थन किया गया है।

बालक नचिकेता जब देखता है कि सर्ववेदस् यज्ञ में उसका पिता ब्राह्मणों को प्रत्येक दृष्टि से असमर्थ और वृद्ध गौएँ दान कर रहा है तो बाल सुलभ चापल्य के कारण अथवा यूँ कहना चाहिए कि अपने पिता को पापकर्म से बचाने की इच्छा से पूछता है कि 'आप मुझे किसे देंगे तात! **कस्मै मां दास्यसि**'। सर्ववेदस् वह यज्ञ है जिसमें अपनी पूरी सम्पत्ति का दान कर दिया जाता है। अदेय वस्तु का दान करने से पाप की प्राप्ति होती है। वृद्ध गौओं का दान ब्राह्मणों के लिए भारस्वरूप ही होगा। ऐसी गौओं का पालन करना गृहस्थी का उत्तरदायित्व है। यदि कोई अपने इस उत्तरदायित्व को दूसरों पर डालना चाहता है तो वह 'भूतयज्ञ' के प्रति प्रमाद करता है क्योंकि एक तरफ तो ब्राह्मणों का अहित कर रहा है और दूसरी तरफ अपने कर्तव्य का पालन भी नहीं कर रहा। इस प्रकार कठोपनिषद् में 'भूतयज्ञ' का पर्याप्त महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

बालक द्वारा बार-बार पूछे जाने पर वाजश्रवस् ने क्रोधित होकर कह दिया कि 'मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ **तं होवाच मृत्यवे त्वां ददामीति**'। पिता के वचनों का पालन करता हुआ नचिकेता यम सदन की ओर प्रस्थान करता है परन्तु वहाँ पहुँचने पर उसे ज्ञात होता है कि यमराज कहीं बाहर गए हुए हैं। वह तीन दिन तक बिना कुछ खाए पिए उनकी प्रतीक्षा करता है। तीन दिन पश्चात् वापस आने पर यमराज वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध होते हुए भी अर्घ्यादि प्रदान कर नचिकेता को प्रसन्न करते हैं व प्रायश्चित के रूप में प्रत्येक रात्रि के लिए एक-एक वर माँगने को कहते हैं।

कठोपनिषद् के प्रस्तुत प्रसंग में 'अतिथियज्ञ' का महत्त्व वर्णित है। यम के वापस आने पर उनके शुभचिन्तक स्पष्ट रूप से कहते हैं कि 'एक ब्राह्मण अतिथि वैश्वानर रूप में आपके घर आया है। आप उसके लिए जल लाएँ अर्थात् अर्घ्यादि प्रदान कर उसे सन्तुष्ट करें अन्यथा अग्नि रूप अतिथि मनुष्य की आशा, प्रतीक्षा, उनसे प्राप्त होने वाले फल, सूनृता, इष्टापूर्त, पुत्र, पशु सबको नष्ट करने में समर्थ है-

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्।।
आशाप्रतीक्षे संगतँ सूनृतां च
इष्टापूर्ते पुत्रपशूँश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे।।[1]

यहाँ 'अतिथियज्ञ' को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि वर प्रदान करने में समर्थ, ब्रह्मवित्, मृत्यु के देवता यमराज भी अतिथि रूप में आए हुए ब्राह्मण बालक का समुचित सत्कार न कर पाने के कारण अपने अनिष्ट के प्रति इतने अधिक आशंकित हो जाते हैं कि उसे भली-भांति सन्तुष्ट कर देने के पश्चात् भी प्रायश्चित रूप में तीन वरदान माँगने को कहते हैं। नचिकेता द्वारा यमराज से माँगे गए तीन वरदानों में भी विशेष महत्त्व एवं रहस्य निहित है। प्रथम वरदान उसने 'पितृपरितोष' का माँगा। उसे ज्ञात है कि उसके पिता ने क्रोधावेश में ही उसे मृत्यु को दे दिया था परन्तु उसके यमराज के पास आ जाने से वह अत्यधिक अशान्तचित्त, दुःखी मन तथा क्रोधयुक्त हो रहे होंगे अतः यमराज से प्रथम वर माँगता हुआ वह कहता है-

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्या-
द्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत
एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।।[2]

अर्थात् हे मृत्यु! जिस प्रकार मेरा पिता शान्तचित्त, प्रसन्न मन और क्रोधरहित हो जाए और आपके द्वारा प्रेषित मुझे पहचान कर मुझसे बातचीत करे। तीनों वरदानों में से यह प्रथम वर माँगता हूँ।

इस वरदान के माध्यम से 'पितृयज्ञ' का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। पिता को देवतुल्य माना गया है 'पितृदेवो भव'। पिता की प्रसन्नता, क्रोधविहीनता और मानसिक शान्ति में ही पितृ यज्ञ की सार्थकता है। पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह पिता की नरक प्राप्ति होने से रक्षा करे। '**पुं नाम नरकात् त्रायत इति पुत्र:**' और उनकी प्रसन्नता, संतुष्टि आदि का पूर्ण ध्यान रखे। नचिकेता ने इन दोनों कर्त्तव्यों का निर्वाह भली–भाँति करके यह प्रमाणित कर दिया कि कठोपनिषत्कार का पंचमहायज्ञों पर अटूट विश्वास था। प्रथम वरदान आधिभौतिक है। इसका सम्बन्ध इस लोक से है। इसके माध्यम से इस बात पर बल दिया गया है कि मनुष्य के लिए अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना अनिवार्य है। माता–पिता और गुरुजन को प्रसन्न किए बिना वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसी कारण तैत्तरीयोपनिषद् की शीक्षावल्ली में स्पष्ट कहा गया है–

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

इसके अतिरिक्त यह वरदान उन व्यक्तियों के लिए है जो भौतिक स्तर पर ही जीवनयापन करने योग्य है। वे यज्ञानुष्ठान करके न तो स्वर्ग प्राप्ति में समर्थ है और न ही आत्मज्ञान प्राप्त कर जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्त होने में सक्षम है। ऐसे मनुष्य सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए और शास्त्रोक्त कर्म करते हुए चित्त शुद्धि करें तथा सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहने की कामना करें जैसा कि ईशोपनिषद् में भी कहा गया है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[३]

यह ध्यातव्य है कि उपनिषद् रहस्यवादी होते हुए भी नैतिकता पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। लौकिक शान्ति के पश्चात् मनुष्य को पारलौकिक सुख की इच्छा होती है अत: नचिकेता ने अपने दूसरे वर से पारलौकिक सुख अर्थात् स्वर्गलोक की प्राप्ति के साधनभूत अग्नि विज्ञान के विषय में पूछा–

स त्वमग्निँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वँ श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण।[४]
स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।[५]

स्वर्ग लोक में किसी भी प्रकार का भय नहीं है। वहाँ मृत्यु और जरा भी नही हैं। भूख प्यास दोनों से रहित होकर मनुष्य वहाँ आनन्दित होता है।

यम ने विस्तारपूर्वक नचिकेता को अग्निविद्या के विषय में बतलाया। उस विद्या को नचिकेता ने वैसा का वैसा ही दोहरा दिया। इससे प्रसन्न होकर यम ने उसे एक और वरदान अपनी तरफ से दिया कि वह अग्नि विद्या नाचिकेताग्नि के नाम से प्रसिद्ध हो जाएगी।

नचिकेता द्वारा माँगा गया यह वरदान 'देवयज्ञ' का महत्त्व उद्घाटित करता है। उपनिषत्कार ने विस्तारपूर्वक इसका उल्लेख करके तथा अपेक्षाकृत अधिक चिरस्थायी स्वर्गलोक को इसका फल बतलाकर 'देवयज्ञ' के प्रति अपना पक्षपात प्रदर्शित किया है। उसने यम के मुख से स्पष्टत: कहलवाया है कि ईंटों के स्वरूप, संख्या और लगाने की विधि इन तीनों को जानकर तीन बार नाचिकेताग्नि का चयन करने वाला विद्वान् देहपात से पूर्व ही मृत्यु के पासों को काटकर शोकरहित होकर स्वर्ग लोक में आनन्दित होता है–

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्युपाशान्पुरत: प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।[६]

यह दूसरा वरदान आधिदैविक है। इसका सम्बन्ध स्वर्ग लोक से है। वस्तुत: नचिकेता स्वयं स्वर्ग का इच्छुक नहीं है परन्तु उसने स्वर्ग की साधनभूत अग्नि ज्ञान विषयक यह वरदान उन व्यक्तियों के लिए माँगा है जो अभी पूर्ण रूप से ज्ञानी न होने के कारण ब्रह्मप्राप्ति के योग्य नहीं है परन्तु भौतिक स्तर के धरातल से ऊपर उठ गए हैं। ऐसे मनुष्यों के लिए यथाविधि अग्नि चयन करते हुए अपेक्षाकृत अधिक स्थिर स्वर्ग लोक को प्राप्त करने का विधान किया गया है। कहा भी गया है– **'स्वर्गकामो यजेत'**। इस वर में नचिकेता का स्वार्थ नहीं अपितु मनुष्यमात्र के हित की चिन्ता ही निहित है।

तीसरे वरदान से नचिकेता आत्मतत्त्व विषयक प्रश्न करके यह जानना चाहता है कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का क्या होता है? पार्थिव शरीर नष्ट हो जाने पर भी वह रहता है अथवा नहीं? दूसरे शब्दों में उसका यह प्रश्न ब्रह्म ज्ञान के विषय में है–

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीय:।[७]

यह तीसरा वरदान आध्यात्मिक है और इसका सम्बन्ध अनश्वर, अनन्त ब्रह्मलोक से है जिसे प्राप्त कर मनुष्य जन्म–मरण के बन्धन से सदा–सदा के लिए मुक्त हो जाता है। यह केवल उन विरले साधकों के लिए है जिनमें (१) नित्यानित्यवस्तुविवेक: (२) इहामुत्रार्थफलभोगविराग: (३) शमदमादिषट्सम्पत् और (४) मुमुक्षुत्वम् – ये चार गुण हैं।

''नित्यानित्यवस्तुविवेक:इहामुत्रार्थफलभोगविराग:शमादिषट्सम्पत्ति: मुमुक्षुत्वं चेति–तत्त्वबोध''[८]

यमराज भी नचिकेता की जिज्ञासा की परीक्षा लेने के लिए आत्मतत्त्व की दुर्बोधता, गहनता तथा गूढ़ता के विषय में बतलाते हैं (१.१.२१) और अन्त में उसे इहलौकिक और पारलौकिक विविध प्रकार के अत्यन्त दुर्लभ और आकांक्षित प्रलोभन देते हुए उन्हें इस वर से मुक्त करने को कहते हैं–

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाँ श्छन्दत: प्रार्थयस्व।
इमा रामा: सरथा: सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यै:
आभिर्मत्प्रत्ताभि: परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षी:।।[९]

परन्तु ब्रह्मज्ञान का पिपासु नचिकेता अपने निश्चय पर अडिग रहता है और यह कह कर कि 'मेरे लिए तो वही वर वरणीय है' इसके अतिरिक्त नचिकेता और कुछ नहीं माँगता, यम को विवश कर देता है–

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं, 'वरस्तु मे वरणीय: स एव'।।[१०]
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते।।[११]

इस प्रकार जब यमराज पूर्ण रूप से आश्वस्त हो जाते हैं कि नचिकेता इहलौकिक तथा पारलौकिक सभी प्रकार के विषय–भोगों से विरक्त है, विवेकयुक्त है तो वे अनेक प्रकार से उसे ब्रह्म ज्ञान का उपदेश देते हैं जो कठोपनिषद् का मुख्य और प्रधान विषय है।

नचिकेता को ब्रह्मविद्या से अवगत करवाने के लिए यमराज सर्वप्रथम 'श्रेय' और 'प्रेय' इन दो मार्गों के विषय में बतलाते हैं। इन्हें 'विद्या' और 'अविद्या' के नाम से भी जाना जाता है। श्रेय मार्ग मोक्ष प्रदान करता है। बुद्धिमान् सोच–विचार करके उसका ही वरण करते हैं जबकि मन्दबुद्धि योग क्षेम के निमित्त प्रेय मार्ग को चुनते हैं–

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर:।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।[१२]

प्रेय का वरण करने वाले जन्म और मृत्यु के चक्कर में पड़े रहते हैं। श्रेय का वरण करने वाले अङ्गुलीगण्य विरले ही होते हैं।

ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने वाला योग्य गुरु और योग्य श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं क्योंकि सभी भौतिकवादी हो गए हैं। वे केवल सांसारिक भोग विलासों के विषय में ही बात करते हैं। इसी कारण आत्मतत्त्व के विषय में सुनने को ही नहीं मिल पाता। पुन: यह इतना गहन, गूढ़ और गम्भीर है कि सुनकर भी समझ में नहीं आता। यदि इसका श्रोता विषय भोगों से अनासक्त और ब्रह्म जिज्ञासु होना चाहिए तो गुरु भी ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए। इसी कारण इसका श्रोता और वक्ता दोनों ही दुर्लभ हैं–

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्य: शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्यु:।[१३]

यह ब्रह्मज्ञान न तो तर्क द्वारा और न ही इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है–

नैषा तर्केण मतिरापनेया, प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।[१४]
एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि:।।[१५]

इन्द्रियाँ केवल विषयगत वस्तुओं को ही प्राप्त कर पाती हैं जबकि आत्मतत्त्व विषयीगत है। यह अनुभूति का विषय है, दर्शन, श्रवण, मनन इत्यादि का नहीं। यह एक शक्ति है जिसे 'हस्तामलकवत्' दिखलाया नहीं जा सकता।

तत्पश्चात् यम नचिकेता को 'ओम्' का महत्त्व बतलाते हैं। ओम् शब्द ब्रह्म है तथा ब्रह्म का ही प्रतीक है। जो साधक शून्य पर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते उनको 'ओम्' पर ध्यान केन्द्रित करने का आदेश दिया गया है। यही 'ओम्' अथवा 'ब्रह्म' समस्त संसार का आधार है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।[१६]
एतद्ध्ये वाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।[१७]

क्या सूर्य, क्या चन्द्रमा, क्या नक्षत्र, क्या विद्युत सभी उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि:।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।[१८]

उसी पर सब आश्रित है। उसका उल्लंघन कोई नहीं करता–

तस्मिँल्लोका: श्रिता: सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्।।[१९]

यद्यपि वह एक है तथापि भिन्न-भिन्न रूप धारण करके समस्त संसार में व्याप्त है ।

वह प्रत्येक प्राणी की हृदयरूपी गुहा में विद्यमान है-

गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत। एतद्वै तत्।।[२०]

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।।[२१]

परन्तु जिस प्रकार सूर्य समस्त लोक का चक्षु होते हुए भी चक्षु सम्बन्धी दोषों से प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार सब प्राणियों की अन्तरात्मा होने पर भी वह सांसारिक बाह्य दु:खों से प्रभावित नहीं होती।।[२२]

यह आत्मा न तो उत्पन्न होती है और न ही मृत्यु को प्राप्त होती है। न ही यह कहीं से उत्पन्न होती है और न ही कोई इससे उत्पन्न होता है। यह नित्य, अजर, अमर, सनातन और शाश्वत है-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।[२३]

श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में आत्मा की अमरता के विषय में कहा गया है जो कठोपनिषद् के मन्त्र से साम्य रखता है-

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय:।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[२४]

आत्मतत्त्व के ज्ञान की प्राप्ति के लिए मनुष्य का जितेन्द्रिय होना परमावश्यक है। जब तक अश्व रूपी इन्द्रियों को लगाम रूपी मन की सहायता से सारथि रूपी बुद्धि द्वारा वश में नहीं किया जाएगा तब तक रथी रूपी आत्मा रथ रूपी शरीर द्वारा उस परम पद को प्राप्त नहीं कर पाएगी जहाँ जाकर पुनर्जन्म नहीं होता।[२५]

इस से सुस्पष्ट है कठोपनिषद रहस्यात्मक होते हुए भी नैतिकता का पूर्णत: पक्षधर है।

मन और इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखने का ढंग भी बतलाते हुए उपनिषत्कार कहता है कि सर्वप्रथम स्थूल इन्द्रियों को उनसे सूक्ष्म मन में लीन करे, फिर मन को उससे सूक्ष्म बुद्धि में। बुद्धि को उससे सूक्ष्म महतत्त्व में तथा अन्त में महतत्त्व को शान्त आत्मा में लीन करें।

यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।।[२६]

स्थूल से सूक्ष्म की तरफ अग्रसर होने का उपदेश देकर इस उपनिषद् में योगसाधना अथवा अध्यात्मयोग द्वारा ब्रह्म प्राप्ति बतलाई गई है।

कठोपनिषद् में पुन: पुन: कहा गया है कि यदि इस संसार में रहते हुए ही मनुष्य शरीर का पतन होने से पूर्व ही ब्रह्म को जान लिया गया तब तो ठीक है अन्यथा मनुष्य जन्ममरणशील लोकों में भिन्न-भिन्न योनियों को प्राप्त करता है-

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रस:।
तत: सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते।।[२७]

ब्रह्मविषयक यह समस्त ज्ञान 'ब्रह्मयज्ञ' का महत्त्व प्रदर्शित करता है क्योंकि यह ज्ञान स्वाध्याय अर्थात् 'ब्रह्मयज्ञ' से कदापि भिन्न नहीं है।

इस प्रकार कठोपनिषद् में ब्रह्मविषयक ज्ञान का अथवा आत्मतत्त्वविषयक ज्ञान का क्रमबद्ध विवेचन किया गया है। लौकिक सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्य के लिए सामाजिक उत्तरदायित्वों का पूर्णत: निर्वाह करना, गुरुजनों को प्रसन्न रखना तथा मन और इन्द्रियों को वश में रखना परमावश्यक है। तत्पश्चात् स्वर्ग प्राप्ति के इच्छुक मनुष्यों के लिए अग्नि चयन विद्या का उपदेश है और अन्त में जो जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए ब्रह्म विद्या का विस्तृत तथा विशद उपदेश दिया गया है।

ये पाँचों यज्ञ-भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ अथवा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करवाने वाले सहकारी साधन एक शृंखला के समान परस्पर जुड़े हुए हैं। एक भी कड़ी का अभाव होने पर लक्ष्य प्राप्ति करना कठिन ही नहीं अपितु नितान्त असम्भव है।

मनुष्य अपने उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों का पालन करते हुए, अग्निहोत्रादि करते हुए ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहे, यही कठोपनिषद् का उपदेश है, यही इसका दर्शन है।

कठोपनिषद् के अनुसार आत्म-साक्षात्कार का मार्ग अत्यन्त कठिन है। इसीलिए आत्मदर्शी लोग इस मार्ग को छुरे की धार पर चलने के सदृश बतलाते हैं। इसलिए इस उपनिषद् वाक्य में आत्मतत्व के जिज्ञासु को सावधान होकर कार्य करने का उपदेश दिया गया है-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।[२८]

यह आत्मज्ञान अत्यन्त गूढ़, गहन व छुरे की धार के समान तीक्ष्ण है। इसकी प्राप्ति के लिए गुरु और शिष्य दोनों का ही योग्य होना परमावश्यक है। योग्य गुरु-शिष्य दोनों का एक साथ एक ही समय पर मिलना अत्यन्त दुर्लभ है-

आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा।[२६]

इस प्रकार कठोपनिषद् में आत्मा के स्वरूप का बहुत ही स्पष्ट और मार्मिक विवेचन योग्य गुरु यमराज और योग्य शिष्य नचिकेता के संवाद के माध्यम से किया गया है। सभी उपनिषदों के वर्ण्य विषय का सार इसी संवाद में निहित है, यह कहना अत्युक्ति न होगी।

१. कठोपनिषद् १.१.७-८
२. कठोपनिषद् १.१.१०
३. ईशोपनिषद् २
४. कठोपनिषद् १.१.१३
५. कठोपनिषद् १.१.१२
६. कठोपनिषद् १.१.१८
७. कठोपनिषद् १.१.२०
८. वेदान्तसार : ४
९. कठोपनिषद् १.१.२५
१०. कठोपनिषद् १.१.२७
११. कठोपनिषद् १.१.२९
१२. कठोपनिषद् १.२.२
१३. कठोपनिषद् १.२.७
१४. कठोपनिषद् १.२.९
१५. कठोपनिषद् १.३.१२
१६. कठोपनिषद् १.३.१७
१७. कठोपनिषद् १.३.१६
१८. कठोपनिषद् २.५.१५
१९. कठोपनिषद् २.३.१
२०. कठोपनिषद् २.१.७

२१. कठोपनिषद् २.१.६
२२. कठोपनिषद् २.२.११
२३. कठोपनिषद् १.२.१८-१९
२४. भगवद्गीता २.१९-२०
२५. कठोपनिषद् १.३.५-९
२६. कठोपनिषद् १.३.१३
२७. कठोपनिषद् २.३.४
२८. कठोपनिषद् १.३.१४
२९. कठोपनिषद् १.२.७